प्राचीन भारतीय इतिहास में श्रेणी संगठन की भूमिका

धर्मबीर
एम.ए. एम.फिल, इतिहास विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
जे.बी.टी. अध्यापक, पलवल

सारांश

प्राचीन भारत में व्यक्ति खानाबदोश अवस्था में रहता था। आवश्यकताओं के विकास तथा सुरक्षा के कारण व्यक्ति झुण्डों में रहने लगा। कालातन्तर में झुण्ड गाँवों में परिवर्तित हो गये। गाँवों का प्रमुख व्यवस्य कृषि था। परन्तु जनसंख्या एवं आवश्यकता के विकास के कारण विभिन्न प्रकार के उद्योग–धन्धों का विकास हुआ। व्यापारियों ने अपनी सुरक्षा एवं व्यापार की उन्नति के लिए संघों का निर्माण कर लिया। इन संघों का प्रमुख कार्य व्यापार की उन्नति तथा व्यापारिक संघर्षों को निपटाना था।

प्राचीन काल में व्यवसायियों और शिल्पकारों ने अपने–अपने व्यवसाय और शिल्प को एक निश्चित दिशा में विकसित और सुगठित किया तथा उसकी सुरक्षा और उन्नति के लिए अपने–अपने संगठन बनाए। ऐसे संघटित व्यापारिक समूह को 'श्रेणी', 'निगम' या 'निकाय' कहा जाता था। भिन्न–भिन्न श्रेणियाँ भिन्न–भिन्न व्यापारिक समूहों का प्रतिनिधित्व करती थी। भारत के आर्थिक जीवन को सुसम्पनन एवं अच्छा बनाने में श्रेणी संस्था का अद्वितीय योग रहा है। इस संस्था के अलग–अलग नियम थे, जो राज्य द्वारा मान्य थे। राजा संघों के नियमों का आदर और सम्मान करता था तथा उनके प्रतिनिधियों को राज्य की प्रशासनिक समिति के सदस्य मनोनीत करता था।

मुख्य शब्द : *आर्थिक, प्रशासनिक, संघों, प्रतिनिधित्व, व्यवसायियों, शिल्पकारों, कृषि, संघर्षों, निकाय, विकसित, समूह, जाति, कुल, नियम*

भूमिका

प्राचीन काल में श्रेणी के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त होते थे, जैसे – कुल, संघ, पूग, निकाय, जाति, व्रात समुदाय, समूह, सम्भुय–समुत्थान, वर्ग, सार्थ और निगम। इस प्रकार की व्यापारिक संस्था का उदय पूर्व वैदिक युग में ही हो चुका था। 'ऋग्वेद' में श्रेणी के लिए कहा गया है, "वह हंसों की तरह एक समूह में कार्य करती थी।"[1] 'पणि' जैसे व्यापारियों का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ था, जो सुरक्षा को ध्यान में रखकर मसूह में व्यापार के लिए जाते थे। 'श्रेष्ठि' और 'गण' जैसे शब्द का उल्लेख भी वैदिक ग्रंथों में हुआ है, जो क्रमशः श्रेणी के मुखिया और नैगम संगठन की ओर संकेत करते हैं।

प्रत्येक 'निगम' अथवा 'श्रेणी' का एक 'प्रधान' अथवा 'अध्यक्ष' होता था, जिसे बौद्ध साहित्य में 'प्रमुख' (पमुख) अथवा 'ज्येष्ठ' (ज्येट्ठक) कहा जाता था। श्रेणी का मुखिया अथवा प्रधान निश्चिय ही 'श्रेष्ठिन्', 'श्रेष्ठि' (सेटि्ट) या 'श्रेष्ठय' के नाम से ख्यात थी। 'कौटिल्य' ने शिल्पकारों के समूह को श्रेणी कहा है।[2]

मिताक्षरा के अनुसार 'भिन्न जाति के लोगों का भिन्न संगठन श्रेणी या जो अपनी किसी एक वस्तु का विक्रय करता था।'[3] इस प्रकार भिन्न–भिन्न जाति के लोगों का भिन्न–भिन्न संगठन था। 'वीरमित्रोदय' में भी एक शिल्प पर जीवनयापन करे वाले भिन्न–भिन्न शिल्पों से संबंधित थे। उनके संगठन को 'श्रेणी' की संज्ञा दी गई है।[4] 'महाभारत' में श्रेणी का प्रयोग व्यापारियों के संगठन के अर्थ में किया गया है।[5] 'पूग' का सर्वप्रथम प्रयोग कौषितिक ब्राह्मण ग्रंथ में हुआ है, जहाँ रूद्र को 'पूग' कहा गया है।[6]

पाणिनी ने 'पूग' 'गण' और संघ का एक साथ उल्लेख किया है। 'वीरमित्रोदय' में हाथी और अश्व पर चढ़ने वाले लोगों को संघ को 'पूग' कहा गया है।[7] 'मिताक्षरा' का कहना है कि विभिन्न वृत्तियाँ अपनाकर ही एक ही नगर अथवा ग्राम में निवास करने वाले विभिन्न जाति के लोगों का एक वर्ग 'पूग' था।[8] 'कात्यायन' के अनुसार वणिकों के समूह को पूग कहा जाता था।[9]

अतः विभिन्न वृत्तियों को अभिव्यक्त करने वाली 'पूग' अथवा 'श्रेणी' संस्थाएँ जाति–पाति और ऊँच–नीच के बंधन से रहित होकर एक ही ग्राम तथा नगर में निवास करती थी और अपने हितों की सुरक्षा स्वयं करती थीं। महाभारत में श्रेणियों का प्रयोग व्यापारियों के संघटन के अर्थ में किया गया है।

नागरिक जीवन के विकास के साथ व्यवसायी और शिल्पी भी ग्राम से नगर की ओर आये तथा अपनी सुविधा को दृष्टि में रखकर उन्होंने अपने–अपने व्यवसाय और शिल्पों का गठन किया। इस प्रकार समाज में विभिन्न व्यवसाय और शिल्पों से संबोधित विभिन्न संगठित समूह बन गये, जिनका सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन के निर्माण में अभूतपूर्व योग था। 'बौद्ध साहित्य' में अनेक व्यवसाय और शिल्प से संबंधित अनेकसंगठन का उल्लेख हुआ है। ऐसे व्यवसायिक संगठन को 'निगम', 'संघ', 'पूग', 'सेनी' (श्रेणी) और 'गण' कहा जाता था।[10] प्रारम्भ में जब व्यवसाय प्रारम्भ हुआ तब उसका कोई संगठन का स्वरूप नहीं था, किन्तु सुविधाओं और हितों को ध्यान में रखकर व्यवसायगत और शिल्पगत स्वतंत्र संगठन का निर्माण होने लगा। ऐसे संगठन श्रेणी समूह के रूप में बन गये। समाज में इन संगठनों का प्रभाव बढ़ने लगा तथा सदस्यों के पारस्परिक वाद–विवाद भी आपस में सुलझने लगे। शिल्पी व्यक्तियों द्वारा दुष्काग्र किए जाने पर उन्हें अपदस्थ करने का अधिकार भी संगठन के पार था। वे अपने विवादों को स्वयं निपटा लेते थे।[11]

जातकों तथा अन्य साहित्य में अनेकानेक वृत्तियाँ अपनाने वाले श्रेणियों का वर्णन है, जिनकी संख्या 18 या उससे भी अधिक मानी जाती है – बढ़ई (लकड़ी का काम करने वाले), स्वर्णकार (सोना, चाँदी आदि धातु का काम करने वाले), पत्थर का काम करने वाले, चर्मकार, दन्तकार ओदयंत्रिक (पनचक्की चलाने वाले), बसकर (बाँस का काम करने वाले), कसकर (ठठेरे), रत्नकर (जौहरी), बुनकर, तिलपिषक (तेली), डलिया बनाने वाले, रंगजेज, चित्रकार, धनिक (धान्य के व्यापारी), कृषक, मछुए, कसाई, नाई, माली, नाविक, चरवाहे, डाकू तथा लुटेरे आदि। श्रेणी प्रमुख को जेट्ठक (ज्येष्ठ) की संज्ञा दी गई है, जो क्रमशः श्रेणी के प्रमुख और नैगम संगठन की ओर इंगित करते हैं। जो व्यापारी वर्ग में श्रेष्ठ था वही

संभवतः 'सेट्ठि' (श्रेष्ठि) कहा जाता था। सेट्ठि के पद कुल क्रमागत होते थे। राज्य और समाज में उनकी प्रतिष्ठा थी। सेट्ठि प्रायः बहुत धनी हुआ करते थे। जातकों में अस्सी करोड़ की सम्पत्ति (असीतिकोटि विभवो) वाले सेट्ठि का वर्णन हुआ है।

मनु पर भाष्य करते हुए मेधातिथि का कथन है कि वेदज्ञ, ब्राह्मण, वणिक, शिल्प, कर आदि के संघ ही श्रेणी हैं। मिताक्षरा के अनुसार भिन्न जाति के लोगों भिन्न संगठन श्रेणी था, जो अपने लिए एक वस्तु का विक्रय करता था। महाभारत में श्रेणी का प्रयोग व्यापारियों के संगठन के अर्थ में किया गया है।

श्रेणी का संगठन :

प्राचीन काल में श्रेणियों का लोकतांत्रिक आधार पर अपना पृथक संगठन होता था। धीरे–धीरे उनका अपना स्वतंत्र विधान बन गया था। 'बौद्ध साहित्य' से वणिक–समुदाय और श्रेणी संगठन पर प्रकाश पड़ता है। बृहस्पति स्मृति के अनुसार, "श्रेणी संगठन की एक प्रबन्धकारी समिति होती थी, जिसमें पाँच, तीन या दो सदस्य होते थे। उस समिति का एक प्रधान या अध्यक्ष होता था। प्रबन्ध समिति के सदस्य कार्यनिपुण, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, ज्ञाता, योग्य और उच्च कुल के होते थे।[12]

ऐसी भी व्यवस्था की गई थी कि अगर कोई कभी सक्षम होते हुए भी अपना कार्य सम्पन नहीं करता था, तो उसे नगर से निष्कासित कर दिया जाता था। किन्तु वह अपने सहायक के साथ लापरवाही से कार्य करता था तो उस पर 6 निष्क या 4 सुवर्ण दण्ड भी लगता था। संगठन के सुनिश्चित नियमों का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति नगर से निकाल दिए जाते थे। प्रबन्धकारी समिति कभी–कभी गलत कार्य करने वाले को प्रताड़ित भी करता था। संगठन का प्रत्येक व्यक्ति अपनी शिकायत राजा के सम्मुख रख सकता था और राजा के ऊपर निर्भर करता था कि वह सोच–विचार कर उसका न्यायोचित उत्तर देता था। संगठन पूर्ण रूप से स्वततंत्र संस्था थी, जो श्रेणी के हित को ध्यान में रखकर कार्य सम्पन्न करती थी।

संगठन की कार्य प्रणाली को संचालित करने के लिए एक कार्यालय भी होता था, जहाँ यदा–कदा सदस्य सम्मिलित होकर विचारों का आदान–प्रदान करते थे। संगठन के नियमों की मान्यता देता हुआ राजा उनके आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप नहीं करता था। सदस्य गण एक जगह एकत्रित होकर सर्वमान्य विषयों पर विचार–विमर्श करते थे। विचार व्यक्त करते समय अगर कोई युक्ति संगत कथन के लिए हानि पहुँचाता था, वक्ता के बोलने पर रुकावट डालता था अथवा अनुचित बात कहता था तो उसे 'पूर्व साहस' दण्ड दिया जाता था। संगठन की समस्त आय सदस्यों में समान रूप से वितरित की जाती थी। यदि प्रबन्धकारी ऋण में प्राप्त धन को श्रेणी के हित में न व्यय करके निजी कार्यों में व्यय करता था तो वह धनराशि उसे लौटानी पड़ती थी।

श्रेणी के पुराने सदस्यों को हटाकर नये सदस्यों को चुनती थी और नये सदस्य शीघ्र ही कार्य संभाल लेते थे, जो सदस्य हटा दिया जाता था वह श्रेणी के उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाता था। संगठन

का कोई भी सदस्य स्वेच्छा से त्यागपत्र दे सकता था।[13] श्रेणी के संगठन में पाँच से अधिक सदस्य होते थे।

श्रेणी–संगठन के कार्य :

श्रेणी–संगठन के मुख्य कार्य अपने उद्योग और व्यवसाय को भली–भाँति से संगठित और उनको उन्नतिशील बनाना था, इसलिए उन्होंने अनेक नियम बनाए। अपने व्यवसाय और उद्योग के अतिरिक्त उन्होंने अनेक कार्य किए। संगठन के विभिन्न कार्य होते थे। न्यायालय के गठन में श्रेणी का प्रतिनिधित्व होता था तथा उसे एक संघटन के रूप में मान्यता प्राप्त थी। खेत, भूमि, उद्यान आदि से संबंधित विवादों में उसके सदस्य न्यायालय में प्रतिनिधित्व करते थे। खेत, बगीचे के रूप में श्रेणी की अचल सम्पत्ति भी होती थी। प्रबन्धकारी और सदस्य श्रेणी से ऋण ले सकते थे, जिसे उचित समय पर वे अपनी श्रेणी को लौटा सकते थे। श्रेणी की ओर से दान–धर्म के अन्तर्गत ब्राह्मणों को दान तथा मन्दिरों का निर्माण किया जाता था।

श्रेणी के कर्त्तव्य अन्यत्न महत्वपूर्ण थे, जो समाज और देश के उत्थान में प्रधान तत्व थे, वह पने पृथक नियम बनाती थी, इस नियम का उल्लंघन करना राजद्रोह के समान माना जाता था। उसके प्रतिनिधि उसके नाम पर न्यायालय संबंधी कार्य सम्पन्न करते थे, जहाँ उसका बहुत अधिक सम्मान था। अत्यन्त चरित्रवान, कार्य के प्रति चिन्त्ति रहने वाला और शुद्ध व्यक्ति ही प्रबन्धकारी होता था, जो संस्था के सदस्यों की कार्य प्रणाली की देख–रेख करता था। अवमानना करने वाले सदस्यों को वह दण्ड देता था, वह समिति के माध्यम से संगठन के नियमों को पालित करता था।[14]

श्रेणी संगठन आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न रहते थे, इसलिए उनके द्वारा विभिन्न प्रकार के सामाजिक और धार्मिक कार्य सम्पन्न किए जाते थे, जो समाज और देश दोनों के हित में होते थे। जनकल्याणकारी, धार्मिक, आर्थिक, वैधानिक, सैनिक आदि विभिन्न कार्य उसके द्वारा होते थे। विपत्ति और संकट के समय राज्य को इन श्रेणियों से ऋण भी प्राप्त होता था।

धार्मिक कार्य :

प्राचीन काल में श्रेणियों ने धर्म संबंधी अनेक निर्माण कार्य किए। बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म के अनेक मन्दिर और देवताओं की प्रतिमाएँ इस सगठन के निर्देश पर निर्मित की गई। इस संबंध में बौद्ध, जैन, हिन्दू साहित्य के विपुल प्रमाण मिलते हैं। अभिलेखों से पता चलता है कि वणिकों और शिल्पियों ने व्यक्तिगत और संयुक्त रूप से अनेक प्रकार के दान दिए। सांची के अभिलेख के स्तूपों से ज्ञात होता है कि महाजनों और शिल्पकारों ने ई.पू. तीसरी सदी से पहली सदी तक अनेक प्रकार के उपहार दिए। कन्हेरी के गुफाओं के अभिलेख में भी अनाज की व्यापरियों द्वारा एक गुफा और एक कुण्ड का दान अंकित है। कई अभिलेखों में इनके द्वारा धार्मिक संस्थाओं को नगद धन देने का उल्लेख मिलता है।

'मन्दसौर अभिलेख' में उल्लिखित है कि रेशम के व्यापारियों ने सूर्य का एक भव्य मन्दिर निर्मित करवाया तथा कालान्तर में उसके भग्न होने पर पुनः उसी श्रेणी ने उसकी मरम्मत भी करवायी थी।[15] 877 ई. के ग्वालियर अभिलेख में भी मंदिर के लिए तैलिक श्रेणी ने तेल और मालिक श्रेणी ने माला प्रदान करने की स्वीकृति दी थी।[16]

जन–कल्याण के कार्य :

बृहस्पति के अनुसार "श्रेणियाँ अनेक लोक–कल्याण से युक्त कार्य करती थी, जैसे सभागृह या यात्रियों के लिए विश्राम गृह का निर्माण मंदिर बनवाना, सरोवर खुदवाना, उद्यान लगवाना आदि विभिन्न प्रकार के जन–कल्याणकारी कार्य श्रेणी संगठन द्वारा देश के विभिन्न स्थानों पर सम्पन्न कराए जाते थे।[17] इनके द्वारा दीन–दुखियों और निर्धनों को सहायता भी प्रदान की जाती थी। दुर्भिक्ष में पीड़ितों की रक्षा करना भी इनका कर्त्तव्य था।[18] श्रेणियों द्वारा जन–कल्याण किए जाने के अनेक अभिलेख मिलते हैं। 'मन्दसौर अभिलेख' से ज्ञात होता है कि अन्न विक्रेताओं की श्रेणी द्वारा हौज का निर्माण कराया गया था।

आर्थिक कार्य :

प्राचीन समय में श्रेणियाँ अपनी मुद्राएं भी चलाती थीं। तक्षशिला से प्राप्त तीसरी शताब्दी ईस्वी की मुद्रा पर 'नैगम' उत्कीर्ण मिलता है। इससे प्रमाणित होता है कि तक्षशिला में इसका प्रचलन था। मुद्राओं के अतिरिक्त मुहरों का भी वे प्रचलन करती थीं। इलाहाबाद के पास भीटा के उत्खन्न से मार्शल की मोहर का एक सांचा मिला है। इसके अतिरिक्त यहाँ चार कुषाणकाल और एक गुप्त काल की मोहरें भी मिली हैं, जिस पर 'निगम' लिखा है। बसाढ़ (वैशाली) से गुप्तकाल की 274 मुहरें मिली हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कुमारामात्म और नगर श्रेष्ठि की तरह सार्थवाह और निगम भी अपनी मुहरें प्रचलित कराते थे।

श्रेणियाँ आधुनिक बैंकों का भी कार्य करती थीं। वे लोगों को ऋण देती थीं और ब्याज के साथ ऋण वसूल करती थीं। 'कुमारसंभव' और 'शाकुन्तलम्' में भी निगमों की बैंक प्रणाली का संदर्भ मिलता है। ब्याज से बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्र दिए जाते थे। तीसरी शदी के एक अभिलेख में वर्णित है कि श्रेणियों ने कुछ धन जमा किया था, जिसके ब्याज से संघाराम में निवास करने वाले रोगियों की औषधि आदि की व्यवस्था की गयी थी।[19]

श्रेणियाँ राज्यों की भूमि की देखभाल भी करती थीं। बंगाल से प्राप्त अभिलेख में श्रेणियों को राजकीय भूमि की देखभाल करने की व्यवस्था को बताया गया है। इन श्रेणियों की यह भी एक विशेषता थी कि इसमें इसके सदस्यों का कभी–कभी साझेदारी में सम्मिलित होने का वर्णन है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लिखित लेखाध्यक्ष नामक अधिकारी रजिस्टरों में निगमों की प्रथाएं आदि का विवरण रखता था। ये श्रेणियाँ बाजारों में क्रय–विक्रय की वस्तुओं के मूल्यों पर दृष्टि रखती थी तथा अधिक लाभ लेने वालों का नियंत्रित करती थीं। श्रेणियों के सदस्य संघों के रूप में दूर–दूर तक जाते थे और अपने

संघ के व्यावसायिक लाभ में सहयोग प्रदान करते थे। आन्तरिक व बाह्य व्यापार भी श्रेणियों की देख–रेख में ही होता था।

वैधानिक कार्य :

जातक साहित्य में हमें श्रेणियों की वैधानिक शक्ति के रूप में महत्व प्राप्त का ज्ञान होता है। गौत्तम ने श्रेणियों के विधान को जान–बूझकर उनके नियमों के अनुसार निर्णय की चर्चा की है।[20] विभिन्न स्मृतियों तथा याज्ञवल्क्य, विष्णु, नारद आदि के अनुसार राजा को अनेक नियमों तथा समझौते को इनके सदस्य पर आरोपित करना चाहिए। उल्लंघन करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी थी।

श्रेणियाँ सामान्य न्यायालय के रूप में :

श्रेणियाँ न्यायालय के रूप में अपने सदस्यों पर अंकुश रखती थीं। नारद के अनुसार श्रेणी का चार सामान्य न्यायालय में दूसरा स्थान था।[21] श्रेणी को सामुहिक रूप में अपनी परम्पराओं के अनुसार अपने सदस्यों पर न्यायिक अधिकार प्राप्त था। कुल, श्रेणी, गज तथा राजा नामक चार न्यायालयों में बृस्पिति, नारद और याज्ञवल्यक्य के अनुसार श्रेणी का दूसरा स्थान था। इसकी कमियों को दूर करने के लिए इसके निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील का विधान था। इसका न्याय संबंधी कार्य इसके सदस्यों तक सीमित था। इसके न्यायिक कार्य करने की दृष्टि दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेखों (433 से 438 ई.) से होता है।

सैनिक कार्य :

श्रेणियों की शक्ति बढ़ने और समाज में उनका विस्तार होने पर उनकी सैन्य–व्यवस्था का स्परूप भी विकसित हुआ। कालान्तर में उन्हें सेना रखने की अनुमति भी प्राप्त हो गयी। कौटिल्य ने कम्बोज और सौराष्ट्र प्रदेशों में क्षत्रियों की श्रेणियों की चर्चा की है। जो खेती, व्यापार और युद्ध के माध्यम जीविका अर्जित करता था। कौटिल्य ने 'श्रेणी बल' का उल्लेख करते हुए उसकी शक्ति की चर्चा की है।[22] बृहस्पति और याज्ञवल्क्य जैसे धर्मशास्त्रकारों ने भी श्रेणियों की सैनिक शक्ति का संदर्भ दिया है।[23] डॉ. भंडारकार ने श्रेणियों द्वारा प्रतिपादित सैनिक तथा डॉ. आर.सी. मजूमदार ने श्रेणी बल का अर्थ कोई–न–कोई व्यवसाय तथा युद्धविषयक कार्य करने वाला बतलाया है। रामायण में सयोध श्रेणी का उल्लेख हुआ है।[24] महाभारत में भी श्रेणी बल का संदर्भ मिलता है। 'मंदसौर–अभिलेख' से ज्ञात होता है कि रेशम बुनने वाले श्रेणी के लोग धर्नुविधा में पारंगत होकर अच्छे यौद्धा के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं।[25]

श्रेणी–संगठन के दोष :

श्रेणी–संगठन के दोष निम्नलिखित हैं :–

1. श्रेणियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती थीं। जातकों में 1000 बढ़ईयाँ के एक संघ को एक रात में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने का वर्णन है। कुमारगुप्त प्रथम के काल में मन्दसौर

अभिलेख से पता चलता है कि लार (गुजरात) के रेशम बुनकर स्थानान्तरिक होकर दशपुर (मालवा) चले गये।

2. श्रेणियों के सदस्यों के व्यवसाय बदलने का भी ज्ञान होता है।

3. पूर्व मध्य काल में श्रेणियाँ जाति के रूप में बदल गयी, जिससे श्रेणियों का ह्रास हुआ तथा इनके स्थान पर मंदिरों को केन्द्र बनाकर एक अलग प्रकार की अर्थ व्यवस्था ने महत्त्व प्राप्त किया।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में श्रेणी के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त होते थे, जैसे – कुल, संघ, पूग, निकाय, जाति, व्रात समुदाय, समूह, सम्भुय–समुत्थान, वर्ग, सार्थ और निगम। इस प्रकार की व्यापारिक संस्था का उदय पूर्व वैदिक युग में ही हो चुका था। संगठन की कार्य प्रणाली को संचालित करने के लिए एक कार्यालय भी होता था, जहाँ यदा–कदा सदस्य सम्मिलित होकर विचारों का आदान–प्रदान करते थे। श्रेणी संगठन आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न रहते थे, इसलिए उनके द्वारा विभिन्न प्रकार के सामाजिक और धार्मिक कार्य सम्पन्न किए जाते थे, जो समाज और देश दोनों के हित में होते थे। बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म के अनेक मन्दिर और देवताओं की प्रतिमाएँ इस सगठन के निर्देश पर निर्मित की गई। श्रेणियाँ राज्यों की भूमि की देखभाल भी करती थीं। बंगाल से प्राप्त अभिलेख में श्रेणियों को राजकीय भूमि की देखभाल करने की व्यवस्था को बताया गया है। श्रेणियों की शक्ति बढ़ने और समाज में उनका विस्तार होने पर उनकी सैन्य–व्यवस्था का स्परूप भी विकसित हुआ। महाभारत में भी श्रेणी बल का संदर्भ मिलता है। समय के साथ–साथ श्रेणी–संगठनों में दोष भी आ गए थे।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद, 1.163.10, हंसा इव श्रेयिशोयतन्ते।
2. अर्थशास्त्र, 5.2, एकेन शिल्पेन पण्येन वा ये जीविन्त तेषां समुह श्रेणी।, अष्टाध्यायी, 2.1.59, श्रेणयःकृतादिभिः।
3. मिताक्षरा, 2.192, एकपण्यंशिल्पोप जीविनः श्रेणयः।
4. वीरमित्रोदय, 7.333, *श्रेण्यः एकाशिल्पोपजीविनः। तास्विदमनयैव श्रेण्या विक्रयेमित्येवमादिकाः समाया वरीवर्तन्ते।।*
5. महाभारत, वनपर्व, 249–16
6. कौशितकी ब्राह्मण, 16.7, रूद्रों वै पूगः।
7. वीरमित्रोदय, 7.333, पूगाः हस्त्यश्वारोहादयः।
8. मिताक्षरा, पूगाः वर्ग समुहाः भिन्न जीतानां भिन्न वृत्तानामेकस्थान निवासिनां यथा ग्राम नगरादयः।

9. कात्यायन, 84, समुहों वणिजादीनां पूगः संपरिकीर्तितः।
10. भिक्खुनी पतिमोक्ख, अध्याय–2
11. विनयपिटक, 4.226
12. बृहस्पति स्मृति, 17.8, 'विवेषिणो व्यसनिनः शालीनालस भीखः। तब्धगति वृद्धबालाश्च न कार्यः कार्यचिन्तकाः।।
13. वीर मित्रोदय, पृ. 432
14. याज्ञ., 2.187190

    सर्व्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्रद्विप्रवासयेत्।

    कर्त्तव्यं वचनं सर्व्वः समूहहितवादिनाम्।।

    यस्तत्र विपरीतः स्यात् स दाप्यः प्रथम दमम्।

    समुह कार्य–आयातन् कृतकर्य्यान विसर्ज्जयते।।

    स दान मानसतकारैः यल्लभेत तदर्पयेत्।

    एकादशगुणं दाप्यो दधसौ नार्पयेत स्वयम्।।
15. एपि.इं., 3.80
16. वही, 1.159
17. बृहस्पति, 17.11–12
18. वीरमित्रोदय, पृ. 423
19. एपि.इं., 8.82–86
20. गौत्तम धर्म सूत्र, 11.20
21. नारद स्मृति, 1.7
22. अर्थशास्त्र, पृ. 340
23. बृहस्पति, 1.28–30, याज्ञ. 2.30
24. रामायण, 2.123.5
25. कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम्, पृ. 80